



Research Inspiration

(Peer-reviewed, Open Access and indexed)
Journal home page: www.researchinspiration.com
ISSN: 2455-443X, Vol. 11, Issue-III, June 2026



वेदान्तसार में निर्विकल्पक समाधि के अष्टाङ्गों का स्वरूप एवं पतञ्जलि योगदर्शन से तुलनात्मक अध्ययन (The Nature of the Eight Limbs of Nirvikalpaka Samādhi in the Vedāntasāra: A Comparative Study with Patañjali's Yoga Philosophy)

Sandeep Kumar^{a,*},

Dr. Lata Devi^{b,**},

^aPh.D. Scholar (Sanskrit), Himachal Pradesh University, Shimla, Himachal Pradesh, India.

^bAssistant Professor, Sanskrit Department, Himachal Pradesh University, Shimla, Himachal Pradesh, India.

KEYWORDS

वेदान्तसार, निर्विकल्पक समाधि, अष्टाङ्ग साधना, पतञ्जलि योगदर्शन, अद्वैत वेदान्त, आत्मज्ञान।

ABSTRACT

प्रस्तुत अध्ययन में वेदान्तसार में निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति के लिए प्रतिपादित अष्टाङ्ग साधना के स्वरूप का विवेचन तथा पतञ्जलि योगदर्शन के अष्टाङ्गयोग से उसका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वेदान्तसार के अनुसार साधक क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्पक समाधि का अभ्यास करता है। ये साधनाएँ उसे नैतिक अनुशासन और शारीरिक स्थिरता से इन्द्रिय-संयम, मानसिक एकाग्रता तथा आध्यात्मिक तल्लीनता की ओर ले जाती हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहयम के पाँच अंग हैं, जबकि शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम के पाँच अंग हैं। ये साधक के आचरण एवं अन्तःकरण को शुद्ध करके उसे उच्चतर साधना के लिए तैयार करते हैं। आसन शरीर को स्थिर बनाता है तथा प्राणायाम प्राणशक्ति का नियमन करते हुए इन्द्रियों और मन के संयम में सहायक होता है। प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाया जाता है; धारणा में चित्त को अद्वितीय ब्रह्म में स्थिर किया जाता है, और ध्यान में ब्रह्म-विषयक चित्तवृत्ति का निरन्तर प्रवाह बना रहता है। सविकल्पक समाधि अन्तिम प्रारम्भिक अवस्था है, जिसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद विद्यमान रहता है, तथापि चित्त ध्येय के स्वरूप के अनुरूप हो जाता है। यही अवस्था निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति में सहायक होती है, जिसमें समस्त विकल्प शान्त होकर आत्मज्ञान में स्थिरता प्राप्त होती है। तुलनात्मक अध्ययन से दोनों परम्पराओं में संरचनात्मक समानताएँ स्पष्ट होती हैं, किन्तु उनके दार्शनिक लक्ष्य भिन्न हैं। पतञ्जलि योगदर्शन में अष्टाङ्गयोग का लक्ष्य चित्तवृत्ति निरोध और कैवल्य है, जबकि वेदान्तसार में इसका उद्देश्य आत्मज्ञान, ब्रह्मसाक्षात्कार तथा अद्वैत-वेदान्त के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति है।

1. प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में समाधि को आत्मज्ञान और मोक्ष की साधना में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वेदान्त परम्परा में साधना का मुख्य उद्देश्य आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझना और ब्रह्म के साथ उसके सम्बन्ध का बोध प्राप्त करना है। इस साधना में मन की चंचलता और बाहरी विषयों के प्रति उसकी आसक्ति को कम करना

आवश्यक माना गया है। इसी क्रम में निर्विकल्पक समाधि को साधना की उच्च अवस्था के रूप में देखा जाता है। इसमें मन की विकल्पात्मक प्रवृत्तियाँ शांत होकर साधक का चित्त आत्मतत्त्व में स्थिर होता है।

वेदान्तसार में निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति के लिए आठ अंगों का उल्लेख किया गया है। ये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। इनका

* Corresponding author

E-mail: sandip1121993@gmail.com (Sandeep Kumar).

DOI: <https://doi.org/10.53724/inspiration/v11n3.03>

Received 06th April 2026; Accepted 20th May 2026

Available online 30th June 2026

2455-443X/©2026 The Journal. Published by Research Inspiration (Publisher: Welfare Universe). This work is licensed under a [Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)



<https://orcid.org/0009-0000-3159-6984>

क्रम साधक को बाहरी आचरण के संयम से लेकर मन की आन्तरिक एकाग्रता तक पहुँचाता है। यहाँ अन्तिम समाधि को सविकल्पक समाधि के रूप में समझा गया है, जो आगे निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति में सहायक होती है। इस प्रकार साधना की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे साधक को बाहरी अनुशासन से आन्तरिक साधना की ओर ले जाती है।

इन आठ अंगों में यम और नियम साधक के आचरण तथा जीवन-व्यवहार को शुद्ध करने का कार्य करते हैं। आसन शरीर को स्थिर करता है और प्राणायाम प्राण की गति को नियंत्रित करता है। सके बाद प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटाया जाता है। धारणा में चित्त को एक निश्चित ध्येय पर लगाया जाता है और ध्यान में उसी ध्येय के विषय में चित्तवृत्ति का लगातार प्रवाह बना रहता है। इसके बाद सविकल्पक समाधि की अवस्था आती है, जो निर्विकल्पक समाधि की ओर ले जाने वाली अगली अवस्था है।

वेदान्तसार में वर्णित इन अंगों का पतञ्जलि योगदर्शन के अष्टाङ्गयोग से भी पर्याप्त साम्य दिखाई देता है। दोनों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का क्रम मिलता है। यम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा नियम में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को स्वीकार किया गया है। इस समानता के कारण दोनों परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी हो जाता है।

फिर भी दोनों की दार्शनिक दृष्टि पूरी तरह समान नहीं है। पतञ्जलि योगदर्शन में अष्टाङ्गयोग का सम्बन्ध मुख्य रूप से चित्तवृत्ति-निरोध और कैवल्य की साधना से है, जबकि वेदान्तसार में इन साधनाओं को आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान और निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति की दिशा में देखा गया है। इसलिए केवल अंगों की समानता को देखना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनके उद्देश्य और दार्शनिक

आधार को भी समझना आवश्यक है।

इस अध्ययन में वेदान्तसार में बताए गए निर्विकल्पक समाधि के अष्टांगों का क्रमशः विवेचन किया गया है तथा जहाँ आवश्यक है वहाँ पतञ्जलि योगदर्शन के साथ उनकी समानता और भिन्नता को भी स्पष्ट किया गया है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि वेदान्तसार में योगसाधना को किस प्रकार आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा से जोड़ा गया है।

2. अध्ययन की आवश्यकता

वेदान्तसार वेदान्त के प्रमुख प्रकरण ग्रन्थों में से एक है। इसमें वेदान्त के कठिन विषयों को अपेक्षाकृत सरल और क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। निर्विकल्पक समाधि की साधना के लिए इसमें जिन आठ अंगों का उल्लेख किया गया है, वे योगपरम्परा से भी जुड़े हुए हैं। इसलिए इन अंगों का अध्ययन केवल वेदान्त की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि योग और वेदान्त के पारस्परिक सम्बन्ध को समझने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

यम और नियम साधक के आचरण को व्यवस्थित करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार और इच्छाओं पर नियंत्रण करना सीखता है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान के द्वारा आन्तरिक शुद्धि तथा साधना की भावना विकसित होती है। इस प्रकार प्रारम्भिक अंग ही साधक के मन को आगे की साधना के लिए तैयार करते हैं।

आसन और प्राणायाम के माध्यम से शरीर और प्राण पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। प्रत्याहार में इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटाया जाता है। इसके बाद धारणा और ध्यान के द्वारा चित्त को एकाग्र करने की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। इस क्रम को समझने से यह स्पष्ट होता है कि समाधि अचानक प्राप्त होने वाली अवस्था नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक क्रमबद्ध साधना-प्रक्रिया होती है।

वेदान्तसार और पतञ्जलि योगदर्शन में अष्टाङ्गों की संरचना में समानता होने के कारण इनके तुलनात्मक अध्ययन की भी आवश्यकता है। दोनों परम्पराएँ समान शब्दों और समान साधना-अंगों का प्रयोग करती हैं, लेकिन उनके दार्शनिक लक्ष्य और व्याख्या में अन्तर दिखाई देता है। इस अन्तर को स्पष्ट करना इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

वर्तमान समय में ध्यान, योग और मानसिक एकाग्रता को लेकर लोगों में रुचि बढ़ रही है। ऐसे समय में भारतीय परम्परा में ध्यान और समाधि की मूल अवधारणाओं को उनके दार्शनिक आधार के साथ समझना आवश्यक है। इसलिए निर्विकल्पक समाधि की साधना और उसके अष्टाङ्गों का अध्ययन दार्शनिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से उपयोगी है।

2.1 शोध के उद्देश्य

1. वेदान्तसार में वर्णित निर्विकल्पक समाधि के अष्टाङ्गों का क्रमबद्ध अध्ययन करना।
2. आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार के माध्यम से शरीर, प्राण और इन्द्रियों के संयम की प्रक्रिया को समझना।
3. वेदान्तसार में सविकल्पक समाधि की स्थिति और निर्विकल्पक समाधि के साथ उसके सम्बन्ध को समझना।
4. निर्विकल्पक समाधि को आत्मज्ञान और मोक्ष की साधना के साथ जोड़कर उसके दार्शनिक महत्त्व को स्पष्ट करना।

2.2 शोध-प्रश्न

1. वेदान्तसार में यम और नियम का साधना की दृष्टि से क्या महत्त्व है?
2. आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार साधक को आगे की आन्तरिक साधना के लिए किस प्रकार तैयार करते हैं?

3. सविकल्पक समाधि को निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति का साधन किस प्रकार माना गया है?
4. वेदान्तसार और पतञ्जलि योगदर्शन में अष्टाङ्ग साधना की संरचना में क्या समानताएँ हैं?
5. समान अष्टाङ्गों के होते हुए भी वेदान्तसार और पतञ्जलि योगदर्शन के दार्शनिक लक्ष्य में क्या अन्तर दिखाई देता है?

2.3 शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का प्रमुख आधार वेदान्तसार का मूल पाठ तथा उसके उपलब्ध व्याख्यात्मक और सम्पादित संस्करण हैं। निर्विकल्पक समाधि के अष्टाङ्गों से सम्बन्धित सूत्रों और संस्कृत वचनों को आधार बनाकर उनके सरल अर्थ को स्पष्ट किया गया है।

अध्ययन में सबसे पहले निर्विकल्पक समाधि की अवधारणा तथा उसके आठ अंगों का क्रम निर्धारित किया गया है। इसके बाद प्रत्येक अंग का अलग-अलग अध्ययन किया गया है। यम और नियम के अन्तर्गत उनके पाँच-पाँच भेदों को समझाया गया है। इसके बाद आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के स्वरूप का क्रमशः विवेचन किया गया है।

अध्ययन में जहाँ आवश्यक हुआ है, वहाँ पतञ्जलि योगदर्शन के योगसूत्रों को भी आधार बनाया गया है। दोनों ग्रन्थों में पाए जाने वाले समान विषयों को साथ रखकर उनके स्वरूप और उद्देश्य की तुलना की गई है। इस तुलना का उद्देश्य केवल समानता दिखाना नहीं है, बल्कि यह समझना है कि समान साधना-अंगों को दोनों दार्शनिक परम्पराएँ किस प्रकार देखती हैं।

इस अध्ययन में संस्कृत मूल पाठ के साथ उपलब्ध हिन्दी व्याख्याओं और विद्वानों द्वारा किए गए विवेचन का भी उपयोग किया गया है। प्राप्त सामग्री का विषय के

अनुसार वर्गीकरण करके उसका विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार अध्ययन में प्राथमिक स्रोत के रूप में मूल ग्रन्थ और सहायक स्रोतों के रूप में टीका, भाष्य तथा अन्य विद्वानों के ग्रन्थों का प्रयोग किया गया है।

3. निर्विकल्पक समाधि के अष्टांग

निर्विकल्पकसमाध्यङ्गानि अस्याङ्गानि

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः।

(श्रीरामतीर्थ, 1990)

वेदान्तसार के अनुसार निर्विकल्पक समाधि की सिद्धि के लिए साधक को क्रमशः आठ साधनात्मक अवस्थाओं से होकर आगे बढ़ना होता है। ये आठ अंग हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यहाँ अंतिम 'समाधि' को सविकल्पक समाधि के रूप में समझा गया है, क्योंकि यह निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति का साधन बनती है। इस प्रकार निर्विकल्पक समाधि को साध्य तथा सविकल्पक समाधि को उसकी प्राप्ति में सहायक साधन माना गया है। निर्विकल्पक अवस्था में चित्त की विकल्पात्मक वृत्तियाँ शांत होकर आत्मतत्त्व के ज्ञान में स्थिरता प्राप्त करती हैं। इस दृष्टि से ये आठ अंग साधक को क्रमशः बाह्य अनुशासन से आन्तरिक एकाग्रता और अन्ततः समाधि की उच्च अवस्था की ओर ले जाते हैं।

3.1 यम

इन आठ अंगों में सर्वप्रथम यम का स्थान है। तत्र अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। यम का उद्देश्य साधक के आचरण को संयमित और शुद्ध बनाना है। वेदान्तसार में इसके पाँच भेद बताए गए हैं— अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। 'यम' का तात्पर्य अहिंसादिक नित्यकर्मों का पालन करते हुए अपनी इन्द्रियों को वश में करना ही यम है— साधकाः एभिः यमयन्ति नियमन्ति इति यमाः। (शास्त्री, 2017)

इस संदर्भ में पतञ्जलि के योगदर्शन से भी स्पष्ट साम्य

दिखाई देता है। योगसूत्र में भी यम के यही पाँच रूप— अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—स्वीकार किए गए हैं। इसलिए दोनों परम्पराओं में यम को साधना की प्रारम्भिक आधारभूमि माना गया है। हालांकि वेदान्तसार में इन अंगों का मुख्य प्रयोजन निर्विकल्पक समाधि और आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति की दिशा में साधक को तैयार करना है, जबकि पतञ्जलि के योगदर्शन में अष्टाङ्गयोग चित्तवृत्ति—निरोध की प्रक्रिया के रूप में व्यवस्थित है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में अष्टांग—साधना की संरचना समान होते हुए भी उसके दार्शनिक लक्ष्य की व्याख्या में कुछ भिन्नता दिखाई देती है। (दशोरा, 1997)

अहिंसा का अर्थ है—मन, वाणी और शरीर के द्वारा किसी भी प्राणी को कष्ट न देना। क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि के कारण किसी जीव को शारीरिक या मानसिक दुःख देना, किसी दूसरे से ऐसा करवाना अथवा ऐसी हिंसा को मौन रूप से स्वीकार करना हिंसा कहलाता है। इसके विपरीत किसी भी प्राणी को जान-बूझकर कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। पशुओं का पालन—पोषण करके उनसे दूध आदि प्राप्त करना अथवा उचित रूप से उनकी सेवा लेना हिंसा नहीं माना जाता। परन्तु यदि पशुओं के भोजन, सुरक्षा और आवश्यकताओं की उपेक्षा करके उनसे कठोरता से काम लिया जाए, तो वह हिंसा है। (सदानन्द योगीन्द्र, 2019)

पतञ्जलि योगदर्शन में भी अहिंसा को यमों में सबसे पहले स्थान दिया गया है। अहिंसा की दृढ़ प्रतिष्ठा होने पर उसके प्रभाव से आसपास रहने वाले जीव भी अपने आप वैर—भाव छोड़ देते हैं—अहिंसा—प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। इस प्रकार वेदान्तसार में अहिंसा को केवल शारीरिक हिंसा से बचने तक सीमित न रखकर मन, वाणी और व्यवहार से किसी को कष्ट न देने के व्यापक अर्थ में समझाया गया है। (हरिहरानन्द आरण्य, 1980)

सत्य दूसरा यम है। सत्य का सामान्य अर्थ है— मन और वाणी में यथार्थता का होना। इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है— सत्यं यथार्थवाङ्मनसे। अर्थात् मन में जो बात जैसी है, वाणी में भी उसका उसी प्रकार प्रकट होना सत्य है। महर्षि व्यास ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है—यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्च। अर्थात् हमने जो देखा, जैसा अनुमान किया और जैसा सुना है, मन तथा वाणी में भी उसी के अनुरूप भाव होना सत्य है। (सदानन्द, 2011)

सत्य बोलते समय केवल सही बात कहना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि वाणी ऐसी होनी चाहिए जिससे किसी को अनावश्यक हानि न पहुँचे। उसमें छल, भ्रम या निरर्थकता नहीं होनी चाहिए। इसलिए सत्य का प्रयोग सभी प्राणियों के हित के लिए किया जाना चाहिए, किसी के नुकसान के लिए नहीं। पतञ्जलि योगदर्शन में भी सत्य को यम के रूप में स्वीकार किया गया है और सत्य की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप कर्मों की सिद्धि का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों परम्पराओं में सत्य को साधक के आचरण और आध्यात्मिक उन्नति का आवश्यक आधार माना गया है।

अस्तेय तीसरा यम है। इसका अर्थ है—बिना दिए हुए किसी दूसरे की वस्तु या धन को न लेना। अन्याय या अनुचित तरीके से दूसरे के धन को प्राप्त करना स्तेय अर्थात् चोरी कहलाता है। उसका त्याग अस्तेय है। सरल शब्दों में, दूसरे के धन अथवा वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा न रखना ही अस्तेय है। पतञ्जलि योगदर्शन में भी अस्तेय को पाँच यमों में शामिल किया गया है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में अस्तेय का मूल भाव दूसरे के अधिकार और संपत्ति का सम्मान करना है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ अष्टाङ्ग मैथुन का त्याग बताया गया है। अर्थात् साधक को विषयासक्ति और कामप्रधान प्रवृत्तियों से स्वयं को दूर रखना चाहिए। इसका उद्देश्य

केवल बाहरी संयम नहीं, बल्कि मन और इन्द्रियों को आध्यात्मिक साधना की ओर लगाना है। पतञ्जलि योगदर्शन में भी ब्रह्मचर्य यम का एक प्रमुख अंग है। वहाँ ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से साधक में विशेष सामर्थ्य की प्राप्ति बताई गई है।

अपरिग्रह का अर्थ है—अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करना। विषयों को प्राप्त करने, सुरक्षित रखने, उनके नष्ट होने तथा उनके प्रति आसक्ति आदि में जो दोष हैं, उन्हें देखकर उनका अनावश्यक संग्रह छोड़ देना अपरिग्रह कहलाता है—

विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्ग्रहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः।

अर्थात् जो वस्तुएँ समाधि या साधना में सहायक नहीं हैं, उनका अनावश्यक संग्रह न करना अपरिग्रह है। इसकी सिद्धि होने पर साधक को अपने जन्मों के संबंध में विशेष ज्ञान प्राप्त होता है—

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।

पतञ्जलि योगदर्शन में भी अपरिग्रह को पाँच यमों में स्वीकार किया गया है और उसकी स्थिरता के फलस्वरूप जन्मों के संबंध में ज्ञान प्राप्त होने की बात कही गई है। अतः यहाँ वेदान्तसार और पतञ्जलि योगदर्शन में स्पष्ट समानता दिखाई देती है। (सदानन्द, 2012)

3.2 नियम

पतञ्जलि योगसूत्र में बताए गए पाँच नियमों को वेदान्ताचार्य सदानन्द ने भी स्वीकार किया है। ये नियम साधक को निष्काम कर्म और मोक्ष की दिशा में प्रेरित करते हैं। शौच आदि को नियम इसलिए कहा गया है कि ये मनुष्य को मोक्ष की साधना में प्रवृत्त करते हैं—मोक्षसाध के निष्काम धर्मे प्रेरयन्ति इति शौचादयो नियमाः। (सदानन्द योगीन्द्र, 2019)

पाँच नियम हैं—

(1) शौच, (2) सन्तोष, (3) तप, (4) स्वाध्याय और (5)

ईश्वरप्रणिधान।

इन पाँचों का मूल सूत्र है—

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(दशोरा, 1997)

शौच का अर्थ पवित्रता या शुद्धता है। यह दो प्रकार का माना गया है— बाह्य और आभ्यन्तर। शरीर को मिट्टी, जल आदि से साफ रखना तथा शुद्ध एवं सात्विक भोजन करना बाह्य शौच के अन्तर्गत आता है। योगभाष्यकार व्यास ने इसे इस प्रकार कहा है—

तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्। (सदानन्द योगीन्द्र, 2019)

सरल रूप में कहा जाए तो शरीर की स्वच्छता बाह्य शौच है, जबकि मन के दोषों और अशुद्ध भावों को दूर करना आभ्यन्तर शौच है। आन्तरिक शुद्धि मुख्यतः भावों की शुद्धता से होती है। पतञ्जलि योगदर्शन में भी शौच को नियम का प्रथम अंग माना गया है और इसके द्वारा शरीर तथा मन की शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है।

सन्तोष का अर्थ है— जो उचित रूप से प्राप्त हो जाए, उसमें प्रसन्न रहना और अनावश्यक वस्तुओं की इच्छा न करना। वर्तमान में उपलब्ध साधनों से अधिक और अनावश्यक वस्तुओं को पाने की इच्छा न करना सन्तोष है। लाभ मिलने पर अत्यधिक आसक्ति न होना और लाभ न मिलने पर दुःखी न होना भी सन्तोष का भाव है। पतञ्जलि योगदर्शन में सन्तोष को भी नियम के रूप में स्वीकार किया गया है। दोनों परम्पराओं में इसका उद्देश्य इच्छाओं को नियंत्रित करके मन में स्थिरता और प्रसन्नता उत्पन्न करना है।

तप का अर्थ कठिन परिस्थितियों और जीवन के द्वन्द्वों को सहन करना है। भूख—प्यास, गर्मी—सर्दी, खड़े रहने या बैठे रहने जैसी परिस्थितियों को सहन करना तप के अन्तर्गत आता है। इसी प्रकार कृच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपन आदि व्रत भी तप में सम्मिलित माने गए हैं। उपवास

करना अथवा अनावश्यक इच्छाओं का त्याग करना भी तप का रूप है। मनुष्य में मुख्य रूप से पुत्र की इच्छा, धन की इच्छा और लोक—प्रतिष्ठा की इच्छा जैसी कामनाएँ होती हैं। इन इच्छाओं पर संयम रखना साधना के लिए आवश्यक माना गया है। पतञ्जलि योगदर्शन में भी तप को नियम के रूप में स्वीकार किया गया है और तप के माध्यम से शरीर तथा इन्द्रियों में अनुशासन और संयम उत्पन्न होने पर बल दिया गया है।

स्वाध्याय का अर्थ है—मोक्ष से संबंधित शास्त्रों का अध्ययन करना तथा प्रणव अर्थात् ऊँकार का जप करना। इसका स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार है— स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा। (हरिहरानन्द आरण्य, 1980)

अर्थात् उपनिषद्, गीता आदि मोक्षशास्त्रों का अध्ययन और ऊँकार का जप स्वाध्याय है। स्वाध्याय से साधक को आत्मचिन्तन, शास्त्रज्ञान और आध्यात्मिक दिशा प्राप्त होती है। पतञ्जलि योगदर्शन में भी स्वाध्याय नियम का एक अंग है और इसके द्वारा इष्टदेवता से सम्बन्ध तथा आध्यात्मिक उन्नति की भावना को महत्त्व दिया गया है।

ईश्वरप्रणिधान का अर्थ है—

अपने सभी कर्मों को परमात्मा को समर्पित करना। इसे इस प्रकार कहा गया है—

तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणमीश्वरप्रणिधानम्।

अर्थात् परम गुरु परमात्मा के प्रति अपने सभी कर्मों को समर्पित कर देना ईश्वरप्रणिधान है। इसका भाव यह है कि साधक अपने कर्मों के फल के प्रति अत्यधिक आसक्ति न होकर अपने कर्मों को ईश्वर को अर्पित करे। इस प्रकार ईश्वर के प्रति समर्पण से मन में अहंकार और फल की आसक्ति कम होती है तथा साधक योगमार्ग में आगे बढ़ता है। पतञ्जलि योगदर्शन में भी ईश्वरप्रणिधान को नियम के रूप में स्वीकार किया गया है और इसे समाधि की सिद्धि तथा ईश्वर—समर्पित साधना से जोड़ा गया है।

(सदानन्द योगीन्द्र, 2019)

इस प्रकार वेदान्तसार और पतञ्जलि योगदर्शन दोनों में यम और नियम को योगसाधना के नैतिक एवं आध्यात्मिक आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। पाँच यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा पाँच नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान दोनों परम्पराओं में समान रूप से मिलते हैं। वेदान्तसार में इनका विवेचन मुख्यतः आत्मशुद्धि, मोक्ष और निष्काम साधना की दृष्टि से किया गया है, जबकि पतञ्जलि योगदर्शन में इन्हें अष्टाङ्गयोग की क्रमबद्ध साधना का प्रारम्भिक आधार माना गया है। दोनों का मूल उद्देश्य साधक के बाहरी आचरण को शुद्ध करके उसके मन को योग, आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा में तैयार करना है।

3.3 आसन

आसन—करचरणादिसंस्थानविशेषलक्षणानि

पद्मस्वस्तिकादीन्यासनानि। (सदानन्द, 2012)

हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य अंगों को किसी विशेष और उचित स्थिति में रखना आसन कहलाता है। आसन के अनेक प्रकार बताए गए हैं, जैसे—पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन आदि। योगी के लिए वही आसन उपयोगी माना जाता है जिसमें शरीर स्थिर रहे और उसे सुख का अनुभव हो। इसलिए आसन का मुख्य उद्देश्य केवल शरीर को किसी विशेष आकृति में रखना नहीं, बल्कि शरीर को साधना के लिए स्थिर और सहज बनाना है।

इसी बात को पतञ्जलि योगदर्शन में संक्षेप में कहा गया है—

स्थिरसुखमासनम्।

अर्थात् जो आसन स्थिर और सुखद हो, वही आसन है। इस प्रकार वेदान्तसार में आसन के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख मिलता है, जबकि योगदर्शन में उसके मूल गुण

स्थिरता और सुख को प्रधानता दी गई है। दोनों का उद्देश्य साधक को आगे की योग—साधना के लिए शरीर की स्थिरता प्रदान करना है। (दशोरा, 1997)

3.4 प्राणायाम

प्राणायाम— रेचकपूरककुम्भकलक्षणाः प्राणनिग्रहोपायाः

प्राणायामाः। (श्रीरामतीर्थ, 1990)

प्राणवायु को नियंत्रित करने के लिए किए जाने वाले अभ्यासों को प्राणायाम कहा जाता है। इसमें मुख्य रूप से पूरक, कुम्भक और रेचक तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं। बाहर से प्राणवायु को भीतर लेना पूरक, भीतर ली गई वायु को रोकना कुम्भक और श्वास को बाहर निकालना रेचक कहलाता है। इस प्रकार प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य श्वास की गति को नियंत्रित करके प्राण को संयमित करना है।

पतञ्जलि ने भी प्राणायाम को आसन के बाद की साधना माना है और कहा है—

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः

प्राणायामः।

अर्थात् आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति का रुकना या उसका नियमन ही प्राणायाम है। यहाँ वेदान्तसार में प्राणायाम को पूरक, रेचक और कुम्भक के आधार पर समझाया गया है, जबकि योगदर्शन में श्वास—प्रश्वास की गति के विच्छेद को इसका मुख्य लक्षण बताया गया है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में प्राण—नियन्त्रण को प्राणायाम का मूल उद्देश्य माना गया है।

प्राणायाम के प्रभाव को बताते हुए योगदर्शन में कहा गया है—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान के प्रकाश को ढकने वाला आवरण धीरे-धीरे कम होता जाता है। इससे साधक का चित्त आगे की योग—साधना के लिए अधिक

योग्य बनता है। (हरिहरानन्द आरण्य, 1980)

प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों की अशुद्धियों के दूर होने को इस प्रकार बताया गया है

दह्यन्ते दह्यामानानां धातूनां हि यथा मला।

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

जैसे अग्नि में तपाने पर धातुओं का मैल दूर हो जाता है, उसी प्रकार प्राण के नियंत्रण से इन्द्रियों के दोष और अशुद्धियाँ भी धीरे-धीरे दूर होती हैं। इसका आशय यह है कि प्राणायाम केवल श्वास का व्यायाम नहीं है, बल्कि मन और इन्द्रियों को संयमित करने में भी सहायक साधना है। (सदानन्द योगीन्द्र, 2019)

3.5 प्रत्याहार

प्रत्याहार— इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहारः। (शास्त्री, 2017)

इन्द्रियों को उनके बाहरी विषयों से हटाकर भीतर की ओर ले जाना प्रत्याहार कहलाता है। सामान्य अवस्था में आँखें रूप को, कान शब्द को, नाक गन्ध को, जिह्वा रस को और त्वचा स्पर्श को ग्रहण करती रहती हैं। जब साधक इन इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर मन के नियंत्रण में ले आता है, तब प्रत्याहार की स्थिति उत्पन्न होती है।

पतञ्जलि योगदर्शन में इसे इस प्रकार कहा गया है—

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः

अर्थात् जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से सम्बन्ध स्थापित नहीं करतीं और चित्त के स्वरूप का अनुसरण करने लगती हैं, तब उसे प्रत्याहार कहा जाता है। इसलिए प्रत्याहार का सरल अर्थ है— इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाना।

इस प्रकार वेदान्तसार और योगदर्शन दोनों में प्रत्याहार को इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होने की अवस्था माना गया है। इसके द्वारा साधक बाहरी संसार से मिलने वाले

आकर्षण और विकर्षण से धीरे-धीरे अपने मन को अलग करना सीखता है।

प्रत्याहार की पूर्णता होने पर इन्द्रियों पर श्रेष्ठ नियन्त्रण प्राप्त होता है। योगदर्शन इसी कारण कहता है

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।

अर्थात् प्रत्याहार की सिद्धि होने पर इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से वश में आने लगती हैं। (हरिहरानन्द आरण्य, 1980)

3.6 धारणा

धारणा— अद्वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा। (सदानन्द, 2011)

अद्वितीय वस्तु अर्थात् ब्रह्म में अन्तःकरण अथवा मन को स्थिर करना धारणा कहलाता है। प्राणायाम से चित्त का संयम होने और प्रत्याहार से इन्द्रियों के विषयों से हटने के बाद साधक अपने मन को किसी एक लक्ष्य पर स्थिर करता है। वेदान्तसार के अनुसार यहाँ वह लक्ष्य अद्वितीय वस्तु अर्थात् ब्रह्म है।

सरल शब्दों में कहा जाए तो जब साधक अपने मन को इधर-उधर भटकने न देकर एक ही ध्येय पर लगाता है और बार-बार उसी ध्येय की ओर मन को ले आता है, तब यह धारणा की अवस्था है।

वेदान्तसार की धारणा में विशेष रूप से ब्रह्म को ध्येय माना गया है। साधक अपने मन, बुद्धि और चित्त को उसी अद्वितीय ब्रह्म में केन्द्रित करता है। इस अवस्था में वह धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगता है कि वास्तविक कर्ता इन्द्रियाँ ही अपने विषयों में कार्य कर रही हैं और आत्मा उनसे भिन्न है।

यह विचार गीता के उस भाव से भी सम्बन्धित है जिसमें इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्त होने की बात कही गई है। इस प्रकार धारणा का उद्देश्य मन को बाहरी विषयों से हटाकर एक निश्चित और उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य पर केन्द्रित करना है। (सदानन्द योगीन्द्र, 2019)

3.7 ध्यान

ध्यान— तत्राद्वितीयवस्तुनि विच्छिद्य
विच्छिद्यान्तरिन्द्रियवृत्तिप्रवाहो ध्यानम्।
अद्वितीय वस्तु अर्थात् ब्रह्म के विषय में अन्तःकरण की वृत्ति का लगातार एक ही दिशा में प्रवाहित होना ध्यान कहलाता है। धारणा में मन को एक स्थान या एक ध्येय पर लगाया जाता है, जबकि ध्यान में उसी ध्येय से सम्बन्धित चित्तवृत्ति लगातार बनी रहती है। (श्रीरामतीर्थ, 1990)
पतञ्जलि योगदर्शन में ध्यान को इस प्रकार परिभाषित किया गया है

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।
अर्थात् जिस ध्येय पर चित्त को लगाया गया है, उसी के सम्बन्ध में चित्तवृत्ति का लगातार एक समान बने रहना ध्यान है। (दशोरा, 1997)
इस प्रकार वेदान्तसार और योगदर्शन में ध्यान की मूल प्रक्रिया लगभग समान है, लेकिन वेदान्तसार में ध्यान का प्रमुख विषय अद्वितीय ब्रह्म है। धारणा के समय साधक अपने चित्त को ब्रह्म पर स्थिर करता है और ध्यान की अवस्था में उसी ब्रह्म-विषयक वृत्ति का निरन्तर प्रवाह बना रहता है।
उदाहरण के लिए साधक 'ब्रह्म ही सत्य है' जैसे ब्रह्म-विषयक विचार को बार-बार अपने चित्त में स्थापित करता है। अन्य सांसारिक विचारों को हटाकर जब वही विचार लगातार बना रहता है, तब उसे ध्यान कहा जाता है। इसलिए धारणा को चित्त को एक विषय पर टिकाने की अवस्था और ध्यान को उसी विषय पर चित्तवृत्ति के निरन्तर प्रवाह की अवस्था कहा जा सकता है।

3.8 समाधि

समाधिस्तूतः सविकल्पक एव।
वेदान्तसार के अनुसार पूर्व में बताई गई सविकल्पक समाधि ही योग का आठवाँ अंग है। इस अवस्था में

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद पूरी तरह समाप्त नहीं होता, बल्कि उनके भेद का आभास बना रहता है। चित्त की वृत्ति ध्येय वस्तु के समान आकार को प्राप्त कर लेती है। इसी अवस्था को सविकल्पक समाधि कहा जाता है। इसे सबीज समाधि भी कहा जाता है। (सदानन्द, 2011)
पतञ्जलि योगदर्शन में समाधि के विषय में कहा गया है—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।
अर्थात् जब ध्यान की अवस्था में केवल ध्येय वस्तु का ही प्रकाश रह जाता है और चित्त अपने स्वयं के स्वरूप से लगभग रहित-सा प्रतीत होता है, तब वह समाधि की अवस्था है। (हरिहरानन्द आरण्य, 1980)

निष्कर्ष

वेदान्तसार में निर्विकल्पक समाधि को साधना की सर्वोच्च अवस्था माना गया है। इसकी प्राप्ति के लिए बताए गए आठ अंग साधक को क्रमशः बाह्य अनुशासन से आन्तरिक साधना की ओर ले जाते हैं। यम और नियम से साधक के आचरण एवं मन में शुद्धता आती है। आसन शरीर को स्थिर करता है और प्राणायाम प्राणशक्ति को नियंत्रित करता है। प्रत्याहार इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाता है। इसके पश्चात् धारणा में चित्त को एक ध्येय पर स्थिर किया जाता है और ध्यान में उसी ध्येय की चित्तवृत्ति लगातार बनी रहती है। सविकल्पक समाधि में चित्त ध्येय के अनुरूप हो जाता है और यही अवस्था निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति में सहायक बनती है।
पतञ्जलि योगदर्शन के साथ तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि वेदान्तसार और योगदर्शन में अष्टाङ्गयोग की मूल संरचना समान है। दोनों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का क्रम मिलता है। पतञ्जलि के “स्थिरसुखमासनम्”, “तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः”, “तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्” तथा “तदेवार्थमात्रनिर्भासं

स्वरूपशून्यमिव समाधिः” जैसे सूत्र वेदान्तसार में वर्णित योगाङ्गों के साथ स्पष्ट साम्य स्थापित करते हैं।

इसके बावजूद दोनों ग्रन्थों के दार्शनिक दृष्टिकोण में अन्तर है। पतञ्जलि योगदर्शन में साधना का प्रमुख उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध और पुरुष के स्वरूप में प्रतिष्ठा है, जबकि वेदान्तसार में योगसाधना का सम्बन्ध ब्रह्मज्ञान और जीव-ब्रह्मैक्य की अनुभूति से जोड़ा गया है। इसलिए वेदान्तसार में अष्टाङ्गयोग केवल चित्त को नियंत्रित करने की पद्धति नहीं है, बल्कि आत्मतत्त्व के ज्ञान और मोक्ष की दिशा में आगे बढ़ने वाला साधनात्मक मार्ग है। इस प्रकार दोनों परम्पराओं में साधना-पद्धति की समानता होते हुए भी उनके अन्तिम दार्शनिक प्रतिपादन में विशिष्ट अन्तर दिखाई देता है।

वेदान्तसार के अनुसार समाधि दो प्रकार की बताई गई है सविकल्पक समाधि और निर्विकल्पक समाधि। सविकल्पक समाधि को निर्विकल्पक समाधि की प्राप्ति का साधन माना गया है और निर्विकल्पक समाधि के आठ अंग बताए गए हैं।

3.9 महत्वपूर्ण सुझाव

1. वेदान्तसार में वर्णित अष्टाङ्ग साधना का अध्ययन केवल सैद्धान्तिक रूप में न करके उसके व्यावहारिक और आध्यात्मिक पक्षों पर भी शोध किया जाना चाहिए।
2. यम और नियम को समकालीन जीवन में नैतिक अनुशासन, मानसिक शुद्धि तथा व्यक्तित्व-विकास के साधन के रूप में अपनाने के प्रयास किए जाने चाहिए।
3. निर्विकल्पक समाधि और पतञ्जलि योगदर्शन की समाधि-अवस्थाओं के सूक्ष्म दार्शनिक भेदों को स्पष्ट करने के लिए मूल संस्कृत ग्रन्थों एवं प्रामाणिक भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

4. अद्वैत वेदान्त और योगदर्शन में प्रयुक्त चित्त, ध्यान, समाधि, आत्मज्ञान, कैवल्य तथा मोक्ष जैसी अवधारणाओं पर पृथक् तुलनात्मक अनुसंधान किया जाना चाहिए।
5. योग-साधना के अध्ययन में आसन और प्राणायाम तक सीमित न रहकर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि जैसे आन्तरिक अंगों को भी उचित महत्व दिया जाना चाहिए।
6. विश्वविद्यालयों और योग-संस्थानों के पाठ्यक्रमों में वेदान्तसार की अष्टाङ्ग साधना तथा पतञ्जलि के अष्टाङ्गयोग का तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित किया जाना चाहिए।
7. साधकों को ध्यान और समाधि की उन्नत अवस्थाओं का अभ्यास किसी योग्य गुरु के मार्गदर्शन में करना चाहिए, जिससे भ्रम तथा अनुचित अभ्यास से बचा जा सके।
8. भविष्य के शोध में वेदान्तीय साधना-पद्धति की तुलना अन्य भारतीय परम्पराओं— जैसे बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन और कश्मीर शैवदर्शन से भी की जा सकती है।
9. निर्विकल्पक समाधि के मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रभावों के अध्ययन के लिए अन्तर्विषयी अनुसंधान को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
10. प्राचीन योग एवं वेदान्त की शिक्षाओं को आधुनिक भाषा में प्रस्तुत करते समय उनकी मूल दार्शनिक भावना और पारम्परिक संदर्भ को सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- दशोरा, न. (1997). *पातञ्जल योग सूत्र: योग दर्शन (तीसरा संस्करण)*। रणधीर प्रकाशन।
- हरिहरानन्द आरण्य, स्वामी। (1980). *पातञ्जलयोगदर्शनम्: व्यासभाष्य, उसका हिन्दी अनुवाद तथा सुविशद हिन्दी व्याख्या* (र. भट्टाचार्य, संपादक, तीसरा संशोधित एवं

परिवर्धित संस्करण)। मोतीलाल बनारसीदास।
सदानन्द। (2011). वेदान्तसार: (आ. मिश्र, व्याख्याकार)। अक्षयवट
प्रकाशन।
सदानन्द। (2012). वेदान्तसार: हिन्दी-व्याख्यासहित (ब. शुक्ल,
व्याख्याकार)। मोतीलाल बनारसीदास।
सदानन्द योगीन्द्र। (2019). वेदान्तसार: (म. ल. अग्रवाल, संपादक)।

साहित्य सरोवर।
शास्त्री, र. (2017). वेदान्तसार (दूसरा संस्करण)। परिमल
पब्लिकेशन्स।
श्रीरामतीर्थ। (1990). वेदान्तसार: (र. शुक्ल, संपादक)। भारतीय
विद्या प्रकाशन।
